Volume: 4 Issue: 9 Pages: 98-104

# धार्मिक परंपराओं में पर्यावरण चेतना

*[1] राखी

*[1] शोधार्थी, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर, बिहार, भारत।

**Article Info.**
**E-ISSN: 2583-6528**
**Impact Factor (SJIF): 6.876**
**Peer Reviewed Journal**
**Available online:**
**www.alladvancejournal.com**

**Received:** 19/Aug/2025
**Accepted:** 19/Sep/2025

***Corresponding Author**
**राखी**
शोधार्थी, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर, बिहार, भारत।

**सारांश:**
मानव जीवन और पर्यावरण एक-दूसरे के पूरक हैं। सभ्यता और संस्कृति के विकास के साथ-साथ धर्म ने न केवल सामाजिक व्यवस्था और नैतिकता को दिशा दी, बल्कि प्रकृति और पर्यावरण के संरक्षण की दृष्टि भी प्रदान की। धार्मिक परंपराओं ने सदैव यह संदेश दिया कि प्रकृति केवल भौतिक संसाधन नहीं है, बल्कि यह जीवन का आधार और अस्तित्व का मूल है। विश्व के सभी धर्मों और धार्मिक परंपराओं की शिक्षाओं में पर्यावरणीय चेतना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। प्राचीन भारतीय धार्मिक परंपराओं में प्रकृति को देवतुल्य माना गया है। वैदिक साहित्य में अग्नि, वायु, जल, सूर्य, आकाश और पृथ्वी को देवताओं का रूप प्रदान किया गया है। ऋग्वेद में पर्यावरणीय संतुलन के लिए प्रार्थनाएँ की गई हैं। उपनिषदों में 'ईशावास्यमिदं सर्वं...' का सिद्धांत सम्पूर्ण सृष्टि को परमात्मा का स्वरूप बताकर उसके संरक्षण का संदेश देता है। रामायण और महाभारत जैसे ग्रंथों में भी वन, नदियों और पशु-पक्षियों के प्रति आदर और संवेदनशीलता प्रकट होती है। जैन धर्म में अहिंसा का सिद्धांत केवल मनुष्यों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह प्रत्येक जीव-जन्तु, वृक्ष और सूक्ष्म जीवों तक विस्तारित है। पर्यावरणीय दृष्टि से जैन धर्म का यह विचार आधुनिक 'ईको-फ्रेंडली एथिक्स' का आधार बनता है। इसी प्रकार बौद्ध धर्म ने करुणा और मध्यम मार्ग के सिद्धांत द्वारा मनुष्य को उपभोग की अति से बचने की शिक्षा दी है। बौद्ध भिक्षु प्रकृति के साथ संतुलित जीवन जीने का आदर्श प्रस्तुत करते हैं। सिख धर्म के 'गुरु ग्रंथ साहिब' की वाणी में जल, वायु और पृथ्वी को गुरु और माता का रूप दिया गया है। 'सरबत दा भला' का संदेश केवल मानव समाज तक नहीं, बल्कि समस्त जीव-जगत और प्रकृति तक विस्तारित है। इस्लाम धर्म में कुरआन और हदीस में पृथ्वी को अल्लाह की अमानत कहा गया है। मनुष्य को 'खलीफा' अर्थात् संरक्षक का पद दिया गया है, जिससे उसका कर्तव्य है कि वह पर्यावरण का संरक्षण करे। इसी प्रकार ईसाई धर्म में 'सृष्टि का संरक्षक' बनने की अवधारणा निहित है। बाइबिल में प्रकृति के संरक्षण और संसाधनों के संतुलित उपयोग पर बल दिया गया है। पारसी धर्म में अग्नि और सूर्य की पूजा पर्यावरणीय पवित्रता का प्रतीक है। यहूदी धर्म में 'बाल तशचित' का सिद्धांत संसाधनों की अनावश्यक बर्बादी को रोकने की शिक्षा देता है। शिंतो परंपरा में प्रकृति के प्रत्येक तत्त्व को पवित्र आत्मा का रूप मानकर उसके संरक्षण की परंपरा है। बहाई धर्म में सृष्टि के सभी तत्त्वों को परमात्मा की रचना मानकर उनके संतुलन और संरक्षण का उपदेश दिया गया है। इस प्रकार हम पाते हैं कि विश्व के सभी धार्मिक परंपराओं में प्रकृति को केवल भौतिक संसाधन के रूप में नहीं, बल्कि दिव्यता और जीवन के आधार के रूप में देखा गया है। यह दृष्टि आधुनिक पर्यावरण संकट के समाधान के लिए अत्यंत उपयोगी हो सकती है। जब जलवायु परिवर्तन, वनों की कटाई, प्रदूषण और जैव विविधता की हानि जैसी समस्याएँ गहरी होती जा रही हैं, तब धार्मिक परंपराओं की यह चेतना एक संतुलित और स्थायी विकास का मार्ग प्रशस्त कर सकती है।

**मुख्य शब्द:** अनुष्ठान, अपरिग्रह, अमानत, अवेस्ता, अशा, अष्टांगिक, अहुरमज्दा, खलीफा, जुबली, दख्मा, पारिस्थितिकी, प्रतीत्यसमुत्पाद, बाल तशचित, वुवेइ, सब्बाथ, सरबत दा भला।

**प्रस्तावना:**
विश्व के सभी धार्मिक परंपराओं में पर्यावरण के प्रति गहरी संवेदना निहित है। ये परंपराएँ न केवल आध्यात्मिक दृष्टि से, बल्कि वैज्ञानिक और व्यावहारिक दृष्टि से भी पर्यावरणीय संतुलन की आवश्यकता को प्रतिपादित करती हैं। आज की परिस्थिति में यदि इन परंपराओं से प्रेरणा लेकर पर्यावरण संरक्षण के प्रयास किए जाएँ, तो मानवता और प्रकृति के बीच सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है और पर्यावरण को भविष्य के लिए सुरक्षित रखा जा सकता है।

## मूल आलेख

धार्मिक परंपराओं में पर्यावरण का अध्ययन अत्यंत व्यापक है। प्राचीन काल से ही धार्मिक परंपराओं ने प्रकृति के साथ मानव के संबंध को विशेष महत्व दिया है। हिन्दू धर्म में नदियों, पर्वतों, पेड़ों और जीव-जंतुओं को पवित्र माना गया है। गंगा, यमुना और सरस्वती जैसी नदियों का धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व अत्यधिक है। नदियों को केवल जलस्रोत के रूप में नहीं, बल्कि जीवन और आध्यात्मिक शुद्धि का माध्यम माना गया है। वृक्षों में पीपल, बरगद, और तुलसी जैसे पेड़ों को धार्मिक पूजा का हिस्सा माना गया है। वनस्पति और जीव-जंतु केवल संसाधन नहीं बल्कि जीवंत और पवित्र सृष्टि के अंग हैं। इस दृष्टिकोण ने प्राकृतिक संरक्षण की एक अनौपचारिक प्रणाली को जन्म दिया है। वैदिक-पौराणिक आदि ग्रंथ, भारतीय संस्कृति और ज्ञान परंपरा के ऐसे मूल स्रोत हैं जिनमें जीवन के समग्र स्वरूप का सैद्धांतिक विवेचन शामिल है। इन ग्रंथों में केवल धार्मिक आस्था या अनुष्ठानों का वर्णन नहीं, मानव और प्रकृति के संबंध का वर्णन भी निहित है। ऋग्वेद से लेकर पुराणों तक का विशाल साहित्य इस बात की पुष्टि करता है कि प्राकृतिक तत्वों की महत्ता, संतुलन और जैविक विविधता जीवन का आवश्यक अंग है। आज जब आधुनिक युग में पर्यावरणीय संकट जीवन के लिए चुनौती बन गई है, तब वैदिक-पौराणिक ग्रंथों का पुनर्मूल्यांकन महत्वपूर्ण हो गया है।

ऋग्वेद में प्रकृति को देवताओं के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। सूर्य, अग्नि, वायु, वरुण, इंद्र, उषा आदि देवताओं की स्तुति केवल धार्मिक आस्था का प्रतीक नहीं है बल्कि यह प्राकृतिक शक्तियों के महत्व का बोध कराती है। सूर्य को जीवन शक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है जिसने ऊर्जा, प्रकाश और ऋतुचक्र का संतुलन स्थापित किया है। वायु को प्राण तत्त्व कहा गया है और पृथ्वी को जीव-जगत के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक माना गया है। जल को अमृततुल्य कहा गया और नदियों को मातृरूपा तथा उनकी पवित्रता और संरक्षण की शिक्षा दी गई है। इस प्रकार वेदों में पर्यावरण के प्रत्येक तत्व की पूजा एवं संरक्षण की स्वीकृति है। यजुर्वेद में पृथ्वी को माता और आकाश को पिता कहा गया है। अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में पृथ्वी की महत्ता व्यक्त करते हुए प्रार्थना की गई है कि हम पृथ्वी को आहत न करें, उसके संसाधनों का विवेक पूर्ण उपयोग करें और उसकी सुंदरता और समृद्धि की रक्षा करें। इस सूक्त में वनस्पतियों, औषधियों, पर्वतों, नदियों, जीव-जंतुओं और ऋतुओं का उल्लेख करते हुए जैविक विविधताओं की महत्ता को दर्शाया गया है।

पुराणों में नदियों, वनों, पर्वतों और पशु-पक्षियों की पवित्रता का वर्णन है। भागवत पुराण में यमुना और गंगा का महत्व बताया गया है, वहीं स्कंदपुराण और पद्मपुराण में तीर्थों और वनों के संरक्षण की शिक्षा दी गई और वृक्षों की कटाई को पाप समझा गया है। मत्स्यपुराण में वृक्ष की महिमा का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि "दशकूपसमा वापी, दशवापीसमो ह्रदः। दशह्रद्समो पुत्रो, दशपुत्रसमो द्रुमः।" [1] जिसका अर्थ है कि दस कुओं के बराबर एक बावड़ी होती है, दस बावड़ियों के बराबर एक तालाब होता है, दस तालाबों के बराबर एक पुत्र का महत्व होता है, और दस पुत्रों के बराबर एक वृक्ष का महत्व होता है। इसी प्रकार गरुड़ पुराण में भी पर्यावरण संरक्षण से संबंधित नियम और आचरण की शिक्षा दी गई है। इस प्रकार इन ग्रंथों का मूल आधार यह है कि मानव स्वयं को प्रकृति का स्वामी न माने, बल्कि उसका अंग समझे। वैदिक ऋषियों ने स्पष्ट किया कि यदि प्राकृतिक संतुलन नहीं है तो जीवन संकट में पड़ जाता है। अर्थात नदियों को दूषित और वनों का अंधाधुंध दोहन नहीं किया जाए और वायु को शुद्ध रखा जाए। आज जब औद्योगिकीकरण, नगरीकरण और उपभोक्तावाद के कारण पर्यावरण संकट गंभीर रूप ले चुका है, तब वैदिक-पौराणिक साहित्य से यह शिक्षा मिलती है कि सह-अस्तित्व ही समाधान है। ये ग्रंथ हमें यह सिखाते हैं कि प्रकृति की शक्तियाँ पूजा के योग्य हैं और उनका संरक्षण धर्म है। पर्यावरण का यह दृष्टिकोण केवल प्राचीन धार्मिक संदर्भ नहीं है, बल्कि आधुनिक विज्ञान से भी मेल खाता है।

उपनिषदों में भी ब्रह्म और प्रकृति के मौलिक संबंध की व्याख्या है। 'ईशावास्योपनिषद्' का वाक्य "ईशा वास्यमिदं सर्वं..." [2] से स्पष्ट है कि संपूर्ण सृष्टि ईश्वरमय है, इसलिए किसी भी तत्व का शोषण या विनाश अधर्म है। उपनिषदों में उल्लिखित आत्मा और प्रकृति के एकत्व की भावना, संयम और संतुलन का संदेश आदि मानव को जिम्मेदार और समझदार बनाता है। मूल रूप से कहा जा सकता है कि वैदिक-पौराणिक ग्रंथों में पर्यावरण का जो व्यापक स्वरूप है, वह न केवल भारतीय संस्कृति की विशेषता है, बल्कि वैश्विक स्तर पर भी उपयोगी दिशानिर्देश है। ये ग्रंथ मानव और प्रकृति के संरचनात्मक संबंधों की जीवन दृष्टि प्रस्तुत करते हैं।

रामायण और महाभारत जैसे महाकाव्यों में भी पर्यावरण से संबंधित तथ्यों का उल्लेख है। रामायण के वनवास प्रसंग से प्रकृति की सुंदरता, उसकी गरिमा और सुरक्षा की भावना प्रकट होती है। वन-जीवन के अंतर्गत राम, लक्ष्मण और सीता ने वनों, नदियों, पर्वतों और पशु-पक्षियों के सह-अस्तित्व का जीवन जिया। वाल्मिकी ने प्रकृति के प्रत्येक तत्व का अत्यंत भावपूर्ण चित्रण किया है। महाभारत में भी प्रकृति के प्रमुख अंगों का उल्लेख है। महाभारत के वनपर्व और शांतिपर्व में प्राकृतिक निर्माण और संरक्षण पर बल दिया गया है और पर्यावरण की रक्षा के लिए पंच महाभूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) की पवित्रता बनाए रखने के निर्देश दिए गए हैं।

बौद्ध धर्म में पर्यावरण चेतना का आधार करुणा, मैत्री और सह-अस्तित्व की भावना में निहित है। बुद्ध ने अपने उपदेशों में बार-बार यह प्रतिपादित किया कि समस्त प्राणी जगत एक दूसरे से जुड़ा हुआ है और इस परस्पर संबद्धता को समझे बिना जीवन में संतुलन स्थापित नहीं किया जा सकता। बौद्ध दृष्टिकोण में प्रकृति को केवल भोग की वस्तु न मानकर जीवन के लिए आवश्यक सहयोगी तत्व के रूप में देखा गया है। इसीलिए बौद्ध धर्म में पर्यावरण के प्रति गहरी संवेदनशीलता दिखाई देती है।

बुद्ध ने पंचशील और अष्टांगिक मार्ग के माध्यम से अहिंसा, करुणा और संयम का जो संदेश दिया, उसमें पर्यावरणीय चेतना का भी बोध निहित है। अहिंसा का अर्थ प्राणी मात्र की हत्या ही नहीं बल्कि किसी भी प्राणी को कष्ट न पहुँचाने से है। यही कारण है कि बौद्ध अनुयायी पशु-पक्षियों और वनस्पतियों को भी जीवन के प्रति सम्मान देने योग्य मानते हैं। बुद्ध ने कहा कि जैसे मनुष्य को जीवन प्रिय है वैसे ही अन्य जीवों को भी जीवन प्यारा है। इस दृष्टि से वृक्षों की रक्षा, जल का संरक्षण और भूमि का संतुलन भी अहिंसा के अंतर्गत आते हैं। बौद्ध ग्रंथों में अनेक प्रसंग मिलते हैं जहाँ प्रकृति और जीव-जगत के संरक्षण का स्पष्ट उल्लेख है। जातक कथाओं में पेड़ों, नदियों, पक्षियों और पशुओं से संबंधित अनेक कथाएँ हैं, जिनमें मनुष्य को यह संदेश दिया गया है कि वह अपने स्वार्थ के लिए प्रकृति का अंधाधुंध दोहन न करे। यहाँ तक कि बुद्ध स्वयं अनेक बार वृक्षों की छाया में ध्यानमग्न हुए और प्रकृति को साधना का सहचर बनाया।

बौद्ध धर्म का 'मध्यम मार्ग' अत्यधिक उपभोग और अत्यधिक त्याग दोनों से दूर रहने का उपदेश देता है। वे कहते हैं "अतीतानं अनुस्सोच—भविष्यं नानुसोच। यथाभूतं पजाणो—पच्चुप्पन्नं सुखं सहेहि।" [3] अर्थात 'अतीत का शोक मत करो, भविष्य की चिंता मत करो, वर्तमान को ही यथार्थ जानो और वर्तमान में ही सुख से रहो।' इस मध्यम मार्ग में पर्यावरणीय संतुलन की गहरी झलक मिलती है। उपभोग की अति ही आज के पर्यावरण संकट का मूल कारण है, जबकि बौद्ध धर्म संयमित जीवन की शिक्षा देता है। यह शिक्षा आज के औद्योगिक और उपभोक्तावादी समाज के लिए अत्यंत प्रासंगिक है। बौद्ध धर्म में चार 'आर्य सत्यों' [4] (दुख है, दुख का कारण है, दुख का निरोध है, दुख निरोध का मार्ग है) और 'प्रतीत्यसमुत्पाद' [5] (कारण-कार्य-संबंध) की अवधारणा भी पर्यावरण चेतना की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। प्रतीत्यसमुत्पाद यह बताता है कि जगत की हर वस्तु

परस्पर आश्रित है। यदि प्रकृति का संतुलन बिगड़ेगा तो मनुष्य का जीवन भी प्रभावित होगा। यह विचार आधुनिक पारिस्थितिकी विज्ञान की धारणा से मेल खाता है।

बौद्ध भिक्षु सदैव सरल जीवन और न्यूनतम संसाधनों के प्रयोग की ओर उन्मुख रहे हैं। उनके जीवन का यह अनुशासन पर्यावरणीय संतुलन के लिए आदर्श माना जा सकता है। बौद्ध मठों के आसपास हरियाली, जल-स्रोतों का संरक्षण और प्राकृतिक सौंदर्य की रक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता था। आज जब पूरी दुनिया पर्यावरण संकट से जूझ रही है, तब बौद्ध धर्म की शिक्षाएँ और भी अधिक प्रासंगिक हो जाती हैं। यह धर्म हमें केवल धार्मिक आस्था का मार्ग ही नहीं दिखाता, बल्कि जीवन के प्रति संवेदनशील दृष्टिकोण भी प्रदान करता है। प्रकृति और प्राणी-जगत के प्रति करुणा, दया और सम्मान ही पर्यावरण चेतना का वास्तविक आधार है और बौद्ध धर्म इस चेतना को अपने सिद्धांतों और आचरण के माध्यम से साकार करता है।

बौद्ध धर्म के साथ ही जैन धर्म में भी पर्यावरण चेतना पर विशेष बल है। जैन मत के आचार और विचार में अहिंसा का जो व्यापक और गहन स्वरूप मिलता है, वह केवल मनुष्य और प्राणियों तक सीमित नहीं है, बल्कि समस्त सृष्टि और प्रकृति के प्रत्येक अंश तक विस्तृत है। जैन दर्शन के अनुसार प्रत्येक जीव, चाहे वह सूक्ष्मतम रूप में ही क्यों न हो, आत्मा से युक्त है और उसका अस्तित्व समान रूप से आदर और संरक्षण का अधिकारी है। यही दृष्टिकोण पर्यावरण चेतना की मूल आधारशिला है।

जैन धर्म में पंचमहाव्रतों (अहिंसासत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहा महाव्रतम्) [6] की परंपरा है जिसमें अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह शामिल हैं। इनमें अहिंसा और अपरिग्रह प्रत्यक्ष रूप से पर्यावरण संरक्षण से जुड़ते हैं। अहिंसा का अर्थ केवल हिंसा से बचना नहीं, बल्कि प्रकृति और उसके सभी संसाधनों के प्रति संवेदनशील दृष्टिकोण अपनाना भी है। सूक्ष्म जीवों, वृक्षों, जल, वायु और मिट्टी में भी जीवन की उपस्थिति मानकर उन्हें हानि पहुँचाना जैन धर्म में पाप माना गया है। अपरिग्रह का सिद्धांत असीमित भोग और संसाधनों के दोहन के विरुद्ध है। भौतिक वस्तुओं के संग्रह को सीमित रखने और केवल आवश्यक वस्तुओं का ही उपयोग करने की शिक्षा जैन आचार में दी गई है। इससे पर्यावरण पर अनावश्यक दबाव नहीं पड़ता और संसाधनों का संतुलित उपयोग संभव होता है। इस प्रकार जैन धर्म मानव को उपभोगवादी संस्कृति से दूर कर संयम और सादगी की ओर प्रेरित करता है, जो पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है।

जैन आगमों में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति को एकेंद्रिय जीव (पृथ्व्यापस्तेजोवायुवनस्पतयश्चैकेन्द्रया:) [7] माना गया है। इनका नाश करना जीव हिंसा के समान है। यही कारण है कि जैन साधु-साध्वियाँ पृथ्वी पर अनावश्यक दबाव नहीं डालते, चलते समय भूमि पर झाड़ू लगाकर सूक्ष्म जीवों को बचाते हैं और जल को छानकर प्रयोग करते हैं ताकि उसमें निवास करने वाले जीवों की रक्षा हो सके। यह आचरण पर्यावरण के प्रति उनकी गहन संवेदनशीलता का प्रतीक है। जैन दर्शन का यह भी मत है कि मनुष्य और प्रकृति का संबंध परस्पर निर्भरता का है – "परस्परोपग्रहो जीवानाम्।" [8] यदि मनुष्य प्रकृति के संतुलन को बिगाड़ता है तो उसका सीधा प्रभाव मानव जीवन पर भी पड़ता है। यह दृष्टि आधुनिक पर्यावरण चिंतन के अनुरूप है, जहाँ प्रकृति को केवल भौतिक संसाधन न मानकर जीवन के आधार के रूप में देखा जाता है।

इस प्रकार जैन धर्म में पर्यावरण चेतना न केवल धार्मिक और नैतिक आदर्श के रूप में विद्यमान है, बल्कि व्यावहारिक जीवन में भी उसके पालन की स्पष्ट व्यवस्था की गई है। संयम, सादगी, अहिंसा और अपरिग्रह जैसे सिद्धांत जैन जीवनशैली को पर्यावरणीय दृष्टि से टिकाऊ और संतुलित बनाते हैं। यही कारण है कि जैन धर्म की पर्यावरण चेतना आज के वैश्विक पर्यावरण संकट के समाधान में भी उपयोगी और अनुकरणीय बन सकती है।

सिख धर्म में पर्यावरण चेतना का आधार गुरु नानक देव जी से लेकर गुरु ग्रंथ साहिब तक स्पष्ट रूप से मिलता है। सिख दर्शन प्रकृति को ईश्वर की रचना मानता है और उसके संरक्षण को धार्मिक कर्तव्य के रूप में प्रस्तुत करता है। गुरु नानकदेव जी ने जपुजी में स्पष्ट कहा है कि 'पवन गुरु है - जो हमें जीवन का मार्ग और प्रेरणा देता है। जल पिता है - जो पोषण और जीवन देता है। धरती माता है - जो सबको धारण करती हैं। दिन और रात धायियों की तरह हैं, जिनके बीच पूरा जगत खेल रहा है।' [9] यह पंक्ति सिख धर्म की पर्यावरणीय दृष्टि का मूल आधार है, जिसमें मानव और प्रकृति के गहरे संबंध को दर्शाया गया है।

गुरु ग्रंथ साहिब में प्रकृति को दिव्यता का रूप माना गया है। जल, वायु, आकाश, सूर्य, चंद्रमा, वृक्ष, पर्वत – सभी को ईश्वर की रचना माना गया है और उनके प्रति सम्मान का भाव रखना आध्यात्मिकता का अंग है। सिख धर्म में पर्यावरण के प्रति जो दृष्टिकोण मिलता है, वह मानव-केन्द्रित न होकर 'सृष्टि-केन्द्रित' है, जिसमें सभी जीव-जंतु और प्राकृतिक तत्त्व समान रूप से ईश्वर की सृष्टि हैं। सिख गुरुओं ने सरल जीवन, परिश्रम और प्रकृति के साथ संतुलन पर बल दिया। लंगर की परंपरा सामूहिक जीवन और संसाधनों के न्यायपूर्ण उपयोग का संदेश देती है। 'गुरु हर राय जी को विशेष रूप से पर्यावरण प्रेमी माना जाता है। उन्होंने औषधीय पौधों के संरक्षण, वनस्पति उद्यानों की स्थापना और जीवों के प्रति करुणा का संदेश दिया है।' [10] आधुनिक समय में भी सिख धर्म के अनुयायी पर्यावरण चेतना के क्षेत्र में सक्रिय हैं। "इकोसिख" जैसे संगठन सिख परंपराओं से प्रेरणा लेकर वृक्षारोपण, जल-संरक्षण और प्रदूषण नियंत्रण के कार्य कर रहे हैं। गुरुद्वारों में सौर ऊर्जा का प्रयोग और प्लास्टिक-निषेध जैसे कदम भी इसी दिशा के उदाहरण हैं। इस प्रकार सिख धर्म प्रकृति को केवल भौतिक संसाधन नहीं मानता, बल्कि उसे ईश्वर की लीला और पवित्र धरोहर मानकर उसकी रक्षा और संतुलन को धर्म का आवश्यक अंग मानता है।

ईसाई धर्म में भी पर्यावरण संरक्षण का विचार निहित है। 'बाइबिल में बार-बार प्रकृति, धरती, पेड़-पौधों, जल, पशु-पक्षियों और सम्पूर्ण सृष्टि को ईश्वर की रचना माना है।' [11] ईसाई मत के अनुसार परमेश्वर ने मनुष्य को 'धरती का प्रबंधक' (Steward of Earth) बनाकर भेजा है, ताकि वह ईश्वर की सृष्टि की रक्षा करे और उसका शोषण न करे। यह दृष्टिकोण पर्यावरणीय संतुलन और संरक्षण की ओर इंगित करता है। 'ईसाई धर्म में "सृष्टि की देखभाल" (Care for Creation) एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है।' [12] पुराने नियम (Old Testament) में कहा गया है कि धरती और उसमें जो कुछ है, सब ईश्वर का है। मनुष्य का कर्तव्य है कि वह इसका संरक्षण करे। नए नियम (New Testament) में भी ईसा मसीह ने करुणा, दया और जिम्मेदारी की भावना को बढ़ावा दिया, जो पर्यावरण के प्रति नैतिक संवेदनशीलता से जुड़ती है। कैथोलिक चर्च के पोप फ्रांसिस ने अपनी विश्वप्रसिद्ध एनसाइक्लिकल Laudato Si' (2015) में पर्यावरण संकट, जलवायु परिवर्तन और पारिस्थितिकी संतुलन की रक्षा पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि धरती हमारा साझा घर है और इसकी रक्षा करना हम सबकी नैतिक जिम्मेदारी है। इस विचार ने ईसाई जगत में पर्यावरण संरक्षण के आंदोलन को और भी गति दी।

'ईसाई परंपरा में 'सब्बाथ' (Sabbath) और 'जुबली' (Jubilee) की परंपरा उल्लिखित है। [13] सब्बाथ में भूमि को विश्राम देने और जुबली में वर्ष में एक बार भूमि, पशुओं और गरीबों को पुनः जीवन और स्वतंत्रता देने की बात करती है। यह धरती के प्राकृतिक संसाधनों के संतुलित उपयोग का प्रतीक है। स्पष्ट है कि सब्बाथ और जुबली केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं बल्कि प्रकृति, भूमि और समाज को संतुलन व न्याय देने की व्यवस्था हैं। आज के संदर्भ में ईसाई संगठन और चर्च पर्यावरण संरक्षण के लिए वृक्षारोपण, जल-संरक्षण, प्रदूषण नियंत्रण और जलवायु परिवर्तन के खिलाफ अभियानों में सक्रिय भूमिका निभा रहे हैं। संक्षेप में कहा जाए तो ईसाई धर्म में पर्यावरण

संरक्षण का मूल भाव यह है कि मनुष्य ईश्वर की सृष्टि का मालिक नहीं, बल्कि सेवक और संरक्षक है। उसका धर्म और नैतिक दायित्व है कि वह प्रकृति के साथ संतुलन बनाए रखे और आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित पर्यावरण छोड़े।

इस्लाम धर्म में पर्यावरण चेतना का विशेष महत्व है क्योंकि यह धर्म सम्पूर्ण सृष्टि को अल्लाह की नेमत और अमानत मानता है। 'कुरआन, सुन्नत और हदीस भी इसी शिक्षा को पुष्ट करता है।' [14] हदीस में प्रकृति के संरक्षण, संतुलन और सतत उपयोग पर बल दिया गया है। कुरआन शरीफ़ में कहा गया है कि अल्लाह ने आकाश, धरती, पर्वत, नदियाँ, पेड़-पौधे, जानवर और मनुष्य सबको एक उद्देश्य के साथ पैदा किया है और इन सबका संतुलन बनाए रखना इंसान की जिम्मेदारी है। इस्लाम यह मानता है कि इंसान धरती का मालिक नहीं बल्कि एक ख़लीफ़ा है जिसे अल्लाह ने पर्यावरण की देखभाल और संरक्षण के लिए नियुक्त किया है।

हदीसों में पैग़म्बर मुहम्मद ने स्वच्छता, हरियाली और प्राकृतिक संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग पर बल दिया है। उन्होंने पेड़ लगाने को नेक काम बताया और जल स्रोतों को प्रदूषित न करने की शिक्षा दी। इस्लाम में जल, वायु और भूमि को पवित्र और सामूहिक धरोहर माना गया है। जल को बर्बाद करना पाप के समान माना गया है, भले ही वह प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हो। पैग़म्बर ने कहा कि यदि क़ियामत आने वाली हो और किसी के हाथ में पौधा हो तो उसे अवश्य लगाना चाहिए, यह कथन पर्यावरण संरक्षण की गहरी भावना को दर्शाता है।

इस्लाम में पशु-पक्षियों के प्रति दया और करुणा भी पर्यावरणीय संतुलन से जुड़ी है। बिना कारण पशुओं को मारना, उन्हें पीड़ा पहुँचाना या उनके प्राकृतिक अधिकारों से वंचित करना इस्लाम में निंदनीय माना गया है। शिकार करने पर भी नियंत्रण रखा गया है ताकि प्रजातियों का विनाश न हो। इस्लामी शिक्षा यह स्पष्ट करती है कि धरती का संतुलन बिगाड़ना मानवता के लिए हानिकारक है। आधुनिक संदर्भ में पर्यावरण संकट जैसे जलवायु परिवर्तन, वनों की कटाई, प्रदूषण और प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन इस्लामी सिद्धांतों के विपरीत हैं। इस्लाम इंसान को सिखाता है कि वह प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग संयम, जिम्मेदारी और न्याय के साथ करे ताकि आने वाली पीढ़ियाँ भी इनका लाभ उठा सकें। इस प्रकार इस्लाम धर्म में पर्यावरण चेतना केवल एक धार्मिक कर्तव्य ही नहीं बल्कि मानवीय और नैतिक जिम्मेदारी भी है। कुरआन और हदीस के उपदेश वर्तमान समय में पर्यावरण संकट का समाधान प्रस्तुत करते हैं और हमें सिखाते हैं कि प्रकृति के साथ सामंजस्य बनाकर चलना ही सच्चा ईमान और इबादत है।

यहूदी धर्म में भी पर्यावरण चिंतन प्राचीन परंपरा का हिस्सा है, जिसमें मानव और प्रकृति के संबंध को धार्मिक तथा नैतिक दृष्टि से समझा गया है। यहूदी धर्मग्रंथों, विशेषकर तोराह, तालमुद और मिद्राश, में पर्यावरण संरक्षण से संबंधित अनेक संकेत मिलते हैं। इन ग्रंथों में यह स्पष्ट किया गया है कि प्रकृति केवल भौतिक संपत्ति नहीं है, बल्कि ईश्वर की सृष्टि का एक अंग है, जिसे सुरक्षित रखना और संतुलित रूप से उपयोग करना मानव का कर्तव्य है।

तोराह में वर्णित 'Shomer Eretz' [15] अर्थात् "भूमि की रक्षा करना" का भाव यह दर्शाता है कि मनुष्य को पृथ्वी का स्वामी नहीं बल्कि संरक्षक माना गया है। यह विचार 'स्टीवर्डशिप' की अवधारणा के रूप में भी जाना जाता है। यहूदी धर्म में कहा गया है कि ईश्वर ने मनुष्य को पृथ्वी की देखभाल का उत्तरदायित्व सौंपा है। 'उत्पत्ति ग्रंथ (Genesis) में यह उल्लेख मिलता है कि ईश्वर ने आदम और हव्वा को बगीचे में रखा और आदेश दिया कि वे उसकी रक्षा करें और उसे नष्ट न करें।' [16] यह आदेश प्रकृति संरक्षण के नैतिक और धार्मिक कर्तव्य को स्पष्ट करता है। तालमुद में 'बाल तश्चित' [17] नामक सिद्धांत दिया गया है, जिसका अर्थ है अनावश्यक रूप से किसी भी चीज़ को नष्ट या व्यर्थ करना वर्जित है। इस सिद्धांत के अंतर्गत पेड़ों की अकारण कटाई, जल का दुरुपयोग, भूमि को बंजर बनाना या पशुओं को अनुचित कष्ट पहुँचाना पाप माना गया है। इस प्रकार यहूदी धर्म में अपव्यय और संसाधनों की अनावश्यक बर्बादी के विरुद्ध स्पष्ट निर्देश दिए गए हैं। यह विचार आधुनिक पर्यावरणीय स्थिरता (sustainability) की अवधारणा से मेल खाता है।

'यहूदी धर्म में कृषि और भूमि के प्रति विशेष संवेदनशीलता दिखाई देती है। हर सातवें वर्ष को 'श्मिता वर्ष' कहा जाता है, जिसमें भूमि को आराम देने और उसे पुनर्जीवित करने की परंपरा है। इस वर्ष खेतों की जुताई नहीं की जाती और भूमि को स्वाभाविक रूप से फलने-फूलने दिया जाता है।' [18] यह प्रथा न केवल कृषि विज्ञान की दृष्टि से लाभकारी है, बल्कि यह प्रकृति के प्रति यहूदियों की संवेदनशीलता को भी दर्शाती है। इसी प्रकार पचासवें वर्ष को 'योवेल वर्ष' कहा जाता है, जिसमें भूमि और संपत्ति को पुनः मूल स्वामी को लौटाने की परंपरा थी। यह भूमि और प्राकृतिक संसाधनों पर अत्यधिक नियंत्रण से बचाने और समानता को बनाए रखने की दिशा में उठाया गया कदम था। यहूदी परंपरा में पशुओं के अधिकारों पर भी बल दिया गया है। यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि पशुओं को अकारण कष्ट न दिया जाए और उनके भोजन-पानी की व्यवस्था की जाए। तोराह में यह भी उल्लेख है कि पशु और मनुष्य दोनों ही ईश्वर की सृष्टि हैं, अतः उनके साथ संवेदनशीलता और करुणा का व्यवहार करना चाहिए। "Tza'ar Ba'alei Chayim" [19] नामक सिद्धांत इसके अंतर्गत आता है, जो पशुओं पर अत्याचार को निषिद्ध करता है। त्योहारों और धार्मिक अनुष्ठानों में भी पर्यावरणीय चेतना देखी जा सकती है। 'सुक्कोत' पर्व में लोग प्राकृतिक सामग्री से झोपड़ी बनाते हैं और कुछ दिनों तक उसी में निवास करते हैं, जिससे मनुष्य को यह स्मरण रहे कि उसका जीवन और अस्तित्व पूरी तरह प्रकृति पर निर्भर है। यह पर्व मानव और पर्यावरण के गहरे संबंध को अनुभव कराने का प्रतीक है।

यहूदी दार्शनिकों और विचारकों ने भी प्रकृति के प्रति गहरी आस्था प्रकट की है। माइमोनिडीज़ जैसे महान यहूदी दार्शनिक ने प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण और संतुलित उपयोग पर बल दिया। उन्होंने कहा कि ईश्वर की सृष्टि में हस्तक्षेप करते समय मनुष्य को संतुलन बनाए रखना चाहिए और किसी भी वस्तु को व्यर्थ नष्ट नहीं करना चाहिए। आधुनिक यहूदी चिंतन में पर्यावरणीय मुद्दों को और अधिक गंभीरता से लिया जाने लगा है। विश्व भर में यहूदी समुदाय पर्यावरण आंदोलन, जलवायु परिवर्तन के विरुद्ध संघर्ष और स्थायी जीवनशैली अपनाने में सक्रिय भूमिका निभा रहा है। सौर ऊर्जा, जल संरक्षण, वृक्षारोपण और हरित प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में यहूदी संस्थाएँ और संगठन कार्य कर रहे हैं। यहूदी धार्मिक नेता भी अपने उपदेशों में यह बात दोहराते हैं कि पर्यावरण की रक्षा करना ईश्वर की आज्ञा का पालन करना है।

इस प्रकार यहूदी धर्म का पर्यावरण चिंतन केवल धार्मिक सिद्धांतों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक व्यावहारिक जीवनशैली का हिस्सा है। इसमें मनुष्य को पर्यावरण का शोषक नहीं बल्कि संरक्षक माना गया है। भूमि, जल, वनस्पति और पशुओं को ईश्वर की धरोहर मानकर उनके संरक्षण और संतुलन की जिम्मेदारी मनुष्य पर डाली गई है। यह दृष्टिकोण आज की पर्यावरणीय चुनौतियों के समाधान में मार्गदर्शक सिद्ध हो सकता है।

पारसी धर्म संसार के प्राचीनतम धर्मों में से एक है जिसकी जड़ें ईरान की सभ्यता में पाई जाती हैं। 'इस धर्म का मूल आधार 'अहुरमज़्दा' की उपासना और 'अशा' (सत्य, धर्म और प्रकृति) के नियमों का पालन है।' [20] पारसी धर्म में प्रकृति को ईश्वर का प्रत्यक्ष स्वरूप माना गया है। अग्नि, जल, वायु और पृथ्वी जैसे पंचतत्व पारसी धार्मिक जीवन के केंद्र में हैं और इन्हें शुद्ध रखना धार्मिक कर्तव्य माना गया है।

अग्नि का महत्व पारसी धर्म में सर्वोच्च है। अग्नि केवल उपासना का माध्यम ही नहीं बल्कि प्रकाश, ऊर्जा और जीवन का भी प्रतीक है। इसलिए अग्नि को अपवित्र करना पाप समझा जाता है। इसी प्रकार

जल को जीवन का आधार माना गया है। पारसी धर्मग्रंथ अवेस्ता में जल की शुद्धता पर विशेष बल दिया गया है और यह स्पष्ट किया गया है कि जल में गंदगी या अपशिष्ट डालना पाप है। यही कारण है कि पारसी परंपरा में नदियों, झरनों और कुओं को स्वच्छ रखने की परंपरा रही है। वायु और पृथ्वी भी पारसी धर्म में उतने ही पवित्र माने गए हैं। वायु को प्रदूषित करना ईश्वर के नियमों के विरुद्ध माना गया है। पृथ्वी को माता के समान मानकर उसे अपवित्र न करने की शिक्षा दी गई है। 'मृत शरीर को जलाना या दफनाना पृथ्वी और अग्नि दोनों को अपवित्र करता है, इसलिए पारसी धर्म में मृतकों को 'दख्मा' या 'टॉवर ऑफ साइलेंस' में रखा जाता है, जहाँ गिद्ध और अन्य पक्षी शरीर को प्राकृतिक चक्र में विलीन कर देते हैं। यह प्रथा इस बात को दर्शाती है कि पारसी धर्म प्रकृति के चक्र को बाधित नहीं करना चाहता बल्कि उसके साथ सामंजस्य स्थापित करता है।' [21]

पारसी धर्म में वृक्ष और वनस्पतियों को भी महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। वृक्षारोपण को पुण्यकर्म माना गया है और वृक्षों को काटना पाप समझा गया है। अवेस्ता में वनस्पतियों की रक्षा करने और उन्हें विकसित करने की प्रेरणा मिलती है। प्रकृति का प्रत्येक अंग ईश्वर की सृष्टि है और उसकी रक्षा करना धार्मिक कर्तव्य है। पारसी धर्म का मूल दर्शन अच्छाई और बुराई के संघर्ष पर आधारित है। जो व्यक्ति पर्यावरण को स्वच्छ और संरक्षित रखता है वह अच्छाई की शक्ति का पोषक है, और जो उसे प्रदूषित करता है वह अंधकार और असत्य की शक्ति का साथ देता है। इस प्रकार पर्यावरण संरक्षण केवल सामाजिक या प्राकृतिक कर्तव्य नहीं बल्कि धार्मिक और नैतिक कर्तव्य भी है।

आज के वैश्विक पर्यावरण संकट के संदर्भ में पारसी धर्म की शिक्षाएँ अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होती हैं। शुद्ध जल, स्वच्छ वायु, प्रदूषण रहित अग्नि और पवित्र पृथ्वी का आदर्श हमें यह संदेश देता है कि मनुष्य यदि ईश्वर की सृष्टि का सम्मान करता है तो पर्यावरण संकट से बच सकता है। पारसी धर्म का यह संदेश संपूर्ण मानवता के लिए एक सार्वभौमिक प्रेरणा है।

चीनी धार्मिक मतों में पर्यावरण चेतना दार्शनिक और आध्यात्मिक परंपरा से जुड़ी हुई है। चीन के धार्मिक जीवन में कन्फ़्यूशियसवाद (Confucianism), ताओवाद (Daoism) और बौद्ध धर्म का विशेष स्थान है। इन तीनों में प्रकृति और मानव का संबंध एकात्म रूप से देखा गया है, जहाँ पर्यावरण का संरक्षण जीवन का आवश्यक अंग माना गया है।

'कन्फ़्यूशियसवाद में 'आकाश-पृथ्वी-मानव' को एक त्रिमूर्ति के रूप में समझा जाता है।' [22] इस मत के अनुसार मनुष्य तभी उन्नत हो सकता है जब वह प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करे। कन्फ़्यूशियस की शिक्षाओं में प्रकृति के प्रति आभार, नैतिकता और संतुलन को महत्व दिया गया है। पेड़-पौधे, जल, वायु और भूमि को सामाजिक जीवन का अभिन्न हिस्सा माना गया है। ताओवाद में प्रकृति की शक्ति और उसकी स्वतःस्फूर्त व्यवस्था को सर्वोपरि माना गया है। ताओ मत कहता है कि मनुष्य को प्रकृति के नियमों का उल्लंघन नहीं करना चाहिए, बल्कि उनके अनुरूप चलना चाहिए। 'वुवेइ (Wu-Wei) अर्थात् 'अकृत्रिम कर्म' का सिद्धांत' [23] मनुष्य को यह सिखाता है कि वह प्रकृति को अपने लाभ हेतु जबरन न मोड़े, बल्कि उसकी सहज गति के अनुसार जीवन यापन करे। ताओ मत में नदियों, पर्वतों, वृक्षों, पशु-पक्षियों को पवित्र माना गया है और उनके संरक्षण को धार्मिक आचरण का हिस्सा समझा गया है। चीनी बौद्ध धर्म में भी अहिंसा और करुणा की परंपरा पर्यावरण चेतना को सशक्त करती है। सभी जीव-जंतुओं को समान रूप से जीवन का अधिकार प्राप्त है, इसलिए जीव हत्या से बचना, वृक्षों और प्राकृतिक संसाधनों का दोहन न करना बौद्ध आचरण का हिस्सा रहा है। बौद्ध ग्रंथों में प्रकृति के सौंदर्य का वर्णन भी मिलता है और साथ ही यह संदेश कि मनुष्य को अपने स्वार्थवश पर्यावरण को नष्ट नहीं करना चाहिए।

चीनी धार्मिक विचारधारा में पर्वत, नदियाँ, वृक्ष और आकाशीय तत्व केवल भौतिक वस्तुएँ नहीं, बल्कि पवित्र और आध्यात्मिक शक्ति से सम्पन्न माने जाते हैं। इसलिए प्राचीन चीनी समाज में प्राकृतिक उपासना का विशेष महत्व रहा है। यह उपासना मनुष्य और प्रकृति के बीच संतुलन बनाए रखने का मार्ग है। इस प्रकार चीनी धार्मिक मत पर्यावरण को केवल संसाधन नहीं मानते, बल्कि उसे जीवन और आध्यात्मिकता का आधार मानते हैं। कन्फ़्यूशियसवाद, ताओवाद और बौद्ध धर्म – तीनों ही मतों ने प्रकृति के संरक्षण और पर्यावरण संतुलन को जीवन का आवश्यक अंग मानकर आज की वैश्विक पर्यावरण चेतना को मार्गदर्शन प्रदान किया है।

शिंतो धर्म जापान की प्राचीन धार्मिक परंपरा है, जिसकी मूल आत्मा प्रकृति के प्रति गहरी आस्था और श्रद्धा से जुड़ी हुई है। 'शिंतो मत में 'कामी' अर्थात् देवत्व का स्वरूप केवल मंदिरों या मूर्तियों में ही नहीं बल्कि वृक्षों, पर्वतों, नदियों, झरनों, पत्थरों और प्राकृतिक घटनाओं में भी निहित माना जाता है।' [24] इसीलिए शिंतो मत में पर्यावरण के प्रति श्रद्धा केवल धार्मिक कर्तव्य ही नहीं बल्कि जीवन जीने की संस्कृति है। प्रत्येक प्राकृतिक वस्तु में दिव्यता को देखना और उसे सम्मानित करना मनुष्य और प्रकृति के बीच सामंजस्य को बनाए रखने की मूल भावना है।

जापानी समाज में पर्यावरण चेतना का आधारभूमि, शिंतो मत की यह मान्यता रही है कि प्रकृति के हर अंश में पवित्र शक्ति निवास करती है। इस विचार ने न केवल धार्मिक अनुष्ठानों को प्रभावित किया बल्कि सामाजिक व्यवहार, स्थापत्य कला और दैनिक जीवन तक में यह भाव गहराई से व्याप्त रहा है। उदाहरणस्वरूप, शिंतो मंदिरों के निकट बड़े-बड़े वृक्षों को विशेष रूप से संरक्षित किया जाता है। इन वृक्षों को 'पवित्र वृक्ष' मानकर उनके चारों ओर रस्सी या रक्षाबंधन जैसी रस्में निभाई जाती हैं। यह परंपरा दर्शाती है कि प्रकृति की रक्षा केवल संसाधन-संरक्षण का कार्य नहीं बल्कि धार्मिक श्रद्धा भी है।

'शिंतो मत में जल शुद्धता का प्रतीक है। इसी दृष्टि से, प्रत्येक अनुयायी मंदिर में प्रवेश से पहले हाथ और मुख धोने की 'मिसोगी' परंपरा का पालन करता है, जो मात्र धार्मिक क्रिया नहीं बल्कि जलस्रोतों की पवित्रता बनाए रखने का संदेश भी देती है।' [25] पर्वतों को देवत्व का प्रतीक मानकर उनकी पूजा की जाती है, जिससे अंधाधुंध खनन या विनाशकारी दोहन की प्रवृत्ति नियंत्रित रहती है। शिंतो धर्म में ऋतु-परिवर्तन, फसलों की बुआई और कटाई के अवसर पर विशेष उत्सव आयोजित किए जाते हैं। ये उत्सव केवल कृषि-आधारित उत्सव नहीं हैं बल्कि पर्यावरण के साथ मनुष्य के पारस्परिक संबंध का उत्सव भी हैं। फसलों की अच्छी पैदावार के लिए देवताओं को धन्यवाद देना और प्राकृतिक चक्रों का आदर करना, पर्यावरण संरक्षण के सांस्कृतिक आयाम को स्पष्ट करता है।

आधुनिक संदर्भ में भी शिंतो परंपरा जापान के पर्यावरणीय आंदोलन के लिए प्रेरणा का स्रोत रही है। औद्योगिकीकरण और शहरीकरण के दबाव के बावजूद जापानी समाज में पर्यावरणीय चेतना अपेक्षाकृत मजबूत बनी रही है, जिसका श्रेय शिंतो मत की प्रकृति-पूजक संस्कृति को जाता है। जंगलों के संरक्षण, नदियों के प्रति श्रद्धा और पर्वतीय स्थलों की सुरक्षा को धार्मिक दृष्टि से जोड़कर आज भी जापान में पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार शिंतो धर्म की मूल भावना यह है कि मनुष्य और प्रकृति में कोई भेद नहीं है, बल्कि दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। प्रकृति की रक्षा करना देवत्व की रक्षा करना है और पर्यावरण का सम्मान करना जीवन का ही सम्मान है।

बहाई धर्म में पर्यावरण चेतना का विचार व्यापक दृष्टिकोण के साथ दृष्टिगत होता है। बहाई मत के अनुसार प्रकृति और जीवन के बीच गहरा संबंध है तथा यह संबंध केवल भौतिक स्तर पर ही नहीं बल्कि आध्यात्मिक स्तर पर भी देखा जाता है। बहाई धर्म की शिक्षाओं में विश्व के सभी धर्मों की मूल भाव का सामंजस्य दिखाई देता है, जिसमें यह माना गया है कि पृथ्वी पर मौजूद सभी जीव-जंतु, पेड़-पौधे, जल,

वायु और प्राकृतिक संसाधन ईश्वर की रचना हैं और इनकी रक्षा करना मानव का नैतिक कर्तव्य है। बहाई धर्म के अनुसार, पर्यावरण संकट केवल वैज्ञानिक या तकनीकी समस्या नहीं है, बल्कि यह नैतिक और आध्यात्मिक संकट भी है। जब मानव स्वार्थ और भौतिक लालसा के कारण प्राकृतिक संसाधनों का दुरुपयोग करता है, तो इसका परिणाम पूरे ग्रह के विनाश के रूप में सामने आता है। बहाई धर्म यह सिखाता है कि मनुष्य को अपनी भौतिक इच्छाओं को नियंत्रित करना चाहिए और प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करना चाहिए।

बहाई ग्रंथों में यह कहा गया है कि मानवता की भलाई तभी संभव है जब पर्यावरण की सुरक्षा सुनिश्चित हो। इस मत के अनुसार विकास और प्रगति तभी सार्थक है जब वह प्रकृति को हानि पहुँचाए बिना किया गया हो। बहाई धर्म एक वैश्विक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है, जिसमें यह माना गया है कि पृथ्वी के सभी संसाधन पूरे मानव समाज की साझा संपत्ति हैं, अतः उनका उपयोग संयम और न्यायपूर्वक होना चाहिए। बहाई शिक्षाओं में यह भी बताया गया है कि 'विज्ञान और धर्म दोनों को साथ मिलकर मानवता और पर्यावरण के हित में कार्य करना चाहिए। केवल धार्मिक उपदेश या केवल वैज्ञानिक उपलब्धियाँ पर्यावरण संकट का समाधान नहीं कर सकतीं, बल्कि जब दोनों मिलकर कार्य करेंगे तभी संतुलित विकास संभव होगा।' [26] बहाई मत के अनुसार पर्यावरण संरक्षण केवल एक स्थानीय समस्या नहीं बल्कि पूरी मानवता का सामूहिक दायित्व है। इस धर्म में पृथ्वी को पवित्र माना गया है और यह विश्वास है कि मनुष्य का वास्तविक आध्यात्मिक विकास तभी संभव है जब वह प्रकृति का सम्मान करे और उसके संतुलन को बनाए रखे। बहाई मत यह भी कहता है कि पर्यावरण संरक्षण में न्याय और समानता का विशेष महत्व है, क्योंकि अक्सर गरीब और वंचित वर्ग पर्यावरणीय संकट से अधिक प्रभावित होता है। अतः पर्यावरण के प्रति बहाई मत की चेतना सामाजिक न्याय और वैश्विक एकता से जुड़ी हुई है। इस प्रकार बहाई धर्म में पर्यावरण चेतना का स्वरूप वैश्विक, आध्यात्मिक और नैतिक है, जो यह सिखाता है कि मनुष्य और प्रकृति के बीच संतुलन बनाए रखना ही मानवता की उन्नति का आधार है।

कैथोलिक धर्म में पर्यावरण चेतना इस विश्वास पर आधारित है कि मनुष्य ईश्वर की रचना के संरक्षक हैं। यह शिक्षा सदियों पुरानी है, जहाँ सेंट फ्रांसिस ऑफ असीसी जैसे संत भी प्रकृति को ईश्वर का उपहार मानते थे और पर्यावरण की देखभाल करते थे। पोप फ्रांसिस ने अपने विश्वपत्र "लौदातो सी'" में जोर दिया है कि पर्यावरण और सामाजिक न्याय अविभाज्य हैं। वेटिकन ने पर्यावरण की चिंता को दर्शाते हुए एक नई प्रार्थना-विधि भी जारी की है, जो पृथ्वी की रक्षा की जिम्मेदारी पर जोर देती है। पोप फ्रांसिस के अनुसार, पर्यावरण और समाज दो अलग-अलग संकट नहीं हैं, बल्कि एक जटिल सामाजिक-पर्यावरणीय संकट है। इसका अर्थ है कि पर्यावरण के प्रति हमारा व्यवहार हमारे समाज के भीतर सबसे गरीब और सबसे कमजोर लोगों को भी प्रभावित करता है। प्रकृति के प्रति प्रेम, उसका सम्मान करना और उसे नुकसान से बचाना, ईश्वर की महानता और प्रेम को समझने का एक तरीका है। इन्हें पारिस्थितिकी का संरक्षक संत घोषित किया गया है, क्योंकि वे प्रकृति को ईश्वर का अद्भुत उपहार मानते थे।

कैथोलिक धर्म चिंतन में प्रकृति को ईश्वर का दर्पण माना गया है। संत फ्रांसिस ऑफ असीसी ने प्रकृति को भाई और बहन का स्वरूप देकर उसकी पवित्रता और जीवन के लिए महत्त्व पर बल दिया। उन्होंने पक्षियों, पेड़ों, नदियों और जानवरों को भी ईश्वर के परिवार का अंग माना और उनसे प्रेम तथा करुणा का संदेश दिया है। उनकी दृष्टि ने कैथोलिक परंपरा में पर्यावरणीय चेतना को मजबूत आधार प्रदान किया है जो आज उतना ही प्रासंगिक है। आधुनिक समय में भी कैथोलिक धर्म ने पर्यावरणीय संकट को गम्भीरता से लिया है। पोप जॉन पॉल द्वितीय ने पर्यावरण को 'मानवता की साझा धरोहर' बताया और उसके संरक्षण के लिए वैश्विक प्रयासों का आह्वान किया। पोप बेनेडिक्ट सोलहवें को 'ग्रीन पोप' कहा गया क्योंकि उन्होंने पर्यावरणीय संतुलन और जलवायु परिवर्तन पर गहरी चिंता व्यक्त की और कैथोलिक चर्च को इस दिशा में सक्रिय भूमिका निभाने के लिए प्रेरित किया।

'पोप फ्रांसिस ने 2015 में 'लाउदातो सी' नामक एनसाइक्लिकल पत्र जारी किया जो पर्यावरण और जलवायु परिवर्तन पर कैथोलिक दृष्टिकोण का व्यापक दस्तावेज माना जाता है। इसमें उन्होंने पृथ्वी को 'हमारा साझा घर' बताया और मनुष्य से अपील की कि वह प्राकृतिक संसाधनों का दोहन बंद कर संरक्षण और संतुलन की दिशा में कदम उठाए। उन्होंने स्पष्ट किया कि पर्यावरणीय संकट केवल पारिस्थितिक समस्या नहीं बल्कि सामाजिक और नैतिक समस्या भी है, क्योंकि इसका सबसे अधिक असर गरीब और कमजोर वर्गों पर पड़ता है। [27]

कैथोलिक धर्म के अनुसार पर्यावरण संरक्षण केवल एक नीतिगत मुद्दा नहीं बल्कि आध्यात्मिक साधना का भी हिस्सा है। प्रार्थना, उपवास और संयम जैसे धार्मिक आचरणों के साथ ही पर्यावरण के प्रति संवेदनशील जीवन शैली अपनाना भी धर्म का हिस्सा है। चर्च विभिन्न स्तरों पर पेड़ लगाने, नवीकरणीय ऊर्जा को बढ़ावा देने और प्रदूषण कम करने जैसे कार्यों में भाग लेता है। इस प्रकार कैथोलिक धर्म में पर्यावरण चिंतन एक बहुआयामी दृष्टिकोण के रूप में सामने आता है। इसमें प्रकृति के प्रति श्रद्धा, जिम्मेदारी और करुणा का भाव शामिल है। यह विचारधारा बताती है कि पर्यावरण की रक्षा करना केवल पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने के लिए नहीं बल्कि ईश्वर की सृष्टि की गरिमा और मानवता की स्थायी समृद्धि के लिए आवश्यक है। विश्व के सभी आदिवासी और स्थानीय धार्मिक परंपराओं में भी प्राकृतिक संसाधनों की संरक्षणात्मक परंपराएँ स्पष्ट रूप देखी जा सकती हैं। कई आदिवासी समुदायों में जल, जंगल और पहाड़ी क्षेत्रों को धार्मिक स्थलों के रूप में पूजा जाता है। उनके रीति-रिवाज और त्योहार पारिस्थितिकी संतुलन को बनाए रखने की दिशा में सहायक हैं। आदिवासी धार्मिक ग्रंथों और लोककथाओं में पेड़-पौधों, नदियों और पशु-पक्षियों की पवित्रता का संदेश मिलता है। इस दृष्टिकोण से यह स्पष्ट होता है कि आदिवासी समुदायों के धार्मिक और सांस्कृतिक परंपराओं ने प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में अदृश्य लेकिन प्रभावशाली योगदान रहा है।

## निष्कर्ष:

यह कहा जा सकता है कि धार्मिक परंपराएँ पर्यावरण संरक्षण की दिशा में प्रेरक शक्ति रही हैं और आज भी उनकी प्रासंगिकता बनी हुई है। हमें यह समझना होगा कि धर्म और पर्यावरण एक-दूसरे से अलग नहीं हैं, बल्कि परस्पर पूरक हैं। धर्म प्रकृति को पवित्र बनाता है और पर्यावरणीय चेतना धर्म को जीवंत बनाए रखती है। यही समन्वय मानव सभ्यता की स्थिरता और पर्यावरण सुरक्षा का आधार है। इसलिए यह अनिवार्य है कि हम वैश्विक धर्म परंपराओं से प्राप्त इस अमूल्य धरोहर को आत्मसात करें और उसे आधुनिक जीवन में लागू करें। जब तक हम इस मार्ग पर नहीं चलते, तब तक पर्यावरणीय संकटों से वास्तविक मुक्ति संभव नहीं होगी।

## संदर्भ सूची:


1. मत्स्यपुराण, अध्याय 154, श्लोक- 512
2. इशोपनिषद, श्लोक-1, स्रोत – Upanishad.org.in.
3. धम्मयद, अध्याय-18, श्लोक – 348
4. सुत्तपिटक, संयुक्त निकाय, अध्याय -56 (सत्य संयोग) धर्मचक्रप्रर्वतन संबंधी सूत्र।
5. सुत्तपिटक, संयुक्त निकाय, अध्याय-12, (निदान संयोग) प्रतित्यसमुत्पाद संबंधी 'सूत्र ।

6. तत्त्वार्थसूत्र, अध्याय-7, (व्रताधिकार) सूत्र-1 से 4 तक l
7. तत्त्वार्थसूत्र, अध्याय-2, (जीविकाधिकार) सूत्र - 13 और 14 l
8. तत्त्वार्थसूत्र, अध्याय - 5, सूत्र – 22 l
9. श्रीगुरुग्रंथ साहिब, जपुजी, पउड़ी-16, अंग - 8 ।
10. सिख धर्म का विश्वकोष (संपादक – हरबंस सिंह) पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला, खंड-2, पृष्ठ-512-14, प्रकाशन वर्ष – 1996 l
11. बाइबिल (Holy Bible: New International Version, Zondervan, 2011) उत्पत्ति 1:1; 1:11–12; 1:20–21; 1:24–25; भजन संहिता 24:1; 104:10–12; 104:24; यशायाह 45:18 l
12. ईसाई धर्म में 'सृष्टि की देखभाल' (Care for Creation) का सिद्धांत बाइबिल (उत्पत्ति 2:15; भजन संहिता 24:1; कुलुस्सियों 1:16) तथा कलीसियाई दस्तावेज़ों (पोप जॉन पॉल द्वितीय, Message for the World Day of Peace, 1990; पोप फ्रांसिस, Laudato Si', 2015) में स्पष्ट रूप से प्रतिपादित है।
13. पवित्र बाइबिल, लैव्यव्यवस्था 25:2–7, 25:10 (न्यू इंटरनेशनल वर्ज़न, ज़ोंडरवन, 2011)
14. इस्लामी दृष्टिकोण में मनुष्य "खलीफ़ा" (प्रतिनिधि/प्रबंधक) के रूप में धरती और सम्पूर्ण सृष्टि की अमानत की देखभाल का उत्तरदायी है। इस्लाम मिज़ान (संतुलन) की रक्षा करने, इसराफ़ (अपव्यय) से बचने और फ़साद फ़िल-अर्ज़ (धरती में अनर्थ/विनाश) से दूर रहने की शिक्षा देता है। इसके प्रमाण क़ुरआन की आयतों (2:30; 6:165; 33:72; 55:7–9; 7:31; 17:27; 7:56; 30:41; 6:141; 6:38) तथा सुन्नत (सहीह बुख़ारी, सहीह मुस्लिम, इब्न माजह, मुस्नद अहमद) में स्पष्ट रूप से मिलते हैं।
15. तोरा (तोराह), लैव्यव्यवस्था 25:23 — "भूमि को सदा के लिये न बेचना; क्योंकि भूमि मेरी है, तुम तो केवल परदेशी और मेरे संग रहने वाले हो।" इस पद के आधार पर रब्बी परंपरा में "Shomer Eretz" (भूमि का रक्षक) की अवधारणा विकसित हुई है, जिसका अर्थ है कि मनुष्य पृथ्वी का स्वामी नहीं, बल्कि संरक्षक है।
16. उत्पत्ति 2:15, बाइबिल, न्यू इंटरनेशनल वर्शन (NIV), ज़ॉन्डरवन, 2011
17. व्यवस्थाविवरण 20:19–20; बाबेलोनियन तालमुद, शब्बत 67b; माइमोनीडेस, मिशनेह तोराह, हिलचोत मेलखिम 6:10।
18. तोरा, लैव्यव्यवस्था 25:1–7, बाइबल (New International Version, Zondervan, 2011)
19. माइमोनीडेस, मिशनेह तोराह, हिलचोत मेलखिम 6:10 – यहूदी कानून में "Tza'ar Ba'alei Chayim" सिद्धांत के अनुसार पशुओं पर अनावश्यक अत्याचार करना वर्जित है l
20. https://www.britannihttps://www.sciepublish.com/article/piica.com/topic/Zoroastrianism/Beliefs-and-mythology
21. https://www.theguardian.com/cities/2015/jan/26/death-city-lack-vultures-threatens-mumbai-towers-of-silence
22. https://www.sciepublish.com/article/pii/630?ututm_source
23. https://www.britannica.com/topic/wuwei-Chinese-philosophy
24. https://www.britannica.com/topic/Shinto
25. https://kyotojournal.org/uncategorized/japanese-religion-through-the-lens-of-water/
26. https://www.bahai.org/beliefs/god-his-creation/ever-advancing-civilization/science-religion
27. https://www.vatican.va/content/francesco/en/encyclicals/documents/papa-francesco_20150524_enciclica-laudato-si.html